

दशलक्षणी धर्म का दसवाँ (दिन है) । ब्रह्मचर्य का अधिकार है । आहाहा ! जो तीव्र दुःखों का समूहरूप धारासहित जिसके प्रवाह से प्राणी मिट्टी के पिण्ड की तरह चार गति में घूमता है और अनेक विकाररूपी धर्म करनेवाला ऐसा यह संसाररूपी चक्र स्त्रियों के आधार से शीघ्रता से घूमता है । आहाहा ! स्पर्शेन्द्रिय अखण्ड पूरे शरीर में है । उसके भोग में स्त्री है, इसलिए उसे लिया है । इस संसार चक्र के परिभ्रमण में स्त्री का संग ही परिभ्रमण का कारण है । आहाहा ! और जिसने उसका संग छोड़ा, मोह को उपशान्त करनेवाले, मोक्ष के अभिलाषी, निर्मल बुद्धिवाले मुनि सदा बहिन, पुत्री और माता समान देखो । यही उत्तम ब्रह्मचर्य है । आहाहा !

ब्रह्म अर्थात् आत्मा, आनन्दस्वरूप प्रभु में स्थिर होना, रमना, इसका नाम ब्रह्मचर्य है। शरीर से ब्रह्मचर्य पाले, वह तो एक अकेला शुभभाव है। पाँचों इन्द्रियों के विषयों की ओर से हटकर और अनीन्द्रिय ऐसा जो भगवान आत्मा, आहाहा! ब्रह्म अर्थात् आनन्दस्वरूप, ज्ञानस्वरूप, शान्तस्वरूप, वीतरागमूर्ति प्रभु में चरना... आहाहा! इसका नाम ब्रह्मचर्य दसवाँ धर्म है।

लोक में पुण्यवान पुरुष राग उत्पन्न करके निरन्तर स्त्रियों के हृदय में निवास करते हैं। क्या कहते हैं? पुण्यवन्त प्राणी है, वह स्त्रियों के हृदय में निवास करते हैं। उन्हें (उनके प्रति) प्रेम होता है। पुण्यवान पुरुष, परन्तु जिन मुनियों के हृदय में वे स्त्रियाँ कभी और किसी प्रकार भी नहीं रहती। आहाहा! पुण्यवन्त प्राणियों के शरीर आदि के कारण अनुकूलता स्त्रियों के हृदय में होती है परन्तु जिनके हृदय में स्त्री नहीं है, आहाहा! पाँच इन्द्रिय के विषय जिनके हृदय में नहीं है, आहाहा! है? वे पुण्यवान पुरुष मुनियों के चरणों की प्रतिदिन अति नम्र बनकर स्तुति करते हैं। आहाहा!

अब यह दसधर्म है न, यह सब चारित्र के भेद हैं। इसीलिए कहते हैं कि वैराग्य और त्यागरूप दो लकड़ियों से बनायी हुई सुन्दर निसरनी। आहाहा! ऊपर जाना हो तो अच्छी लकड़ी की निसरनी (सीढ़ी) होती है न? उसी प्रकार मोक्ष जाने के लिये यह सुन्दर निसरनी है। आहाहा! ज्ञान और वैराग्य। अर्थात् भगवान आत्मा का जो ज्ञान, ब्रह्म-आनन्दस्वरूप मैं हूँ—ऐसा जो ज्ञान और पुण्य-पाप के विकल्प का वैराग्य, रक्त से विरक्त, इन दो प्रकार की लकड़ियों से बँधी हुई मोक्ष के लिये चढ़ने की निसरनी है। आहाहा! समझ में आया?

जो महान स्थिर सीढ़ियोंवाली होकर, यह दस प्रकार का धर्म ज्ञान और वैराग्यवाला यह महा दृढ़ सीढ़ियोंवाली निसरनी है। आहाहा! मोक्षमहल में जाने के लिये चढ़ने की अभिलाषा रखनेवाले मुनियों के लिये योग्य है। आहाहा! तीन लोक के अधिपतियों द्वारा स्तुयमान—स्तवन के योग्य दस धर्मों के विषय में किन पुरुषों को हर्ष नहीं होगा। आहाहा!

यह दस प्रकार का जो धर्म, उत्तम क्षमा से लेकर ब्रह्मचर्य, वह कहते हैं कि तीन लोक के अधिपतियों से वन्द्य है। वह दस प्रकार का धर्म तीन लोक के अधिपतियों से स्तुति करनेयोग्य है। इस दस धर्म के विषय में किन पुरुषों को हर्ष नहीं होगा। आहाहा! अन्तर में आनन्द की धारा में किसे हर्ष नहीं होगा? ऐसा कहते हैं। दस प्रकार का धर्म अर्थात्

चारित्र। स्वरूप का चारित्र, रमणता, वह दस प्रकार का धर्म है। आहाहा! कठिन बातें, भाई! दुनिया को अभी (कठिन लगता है)।

अकेला शरीर से ब्रह्मचर्य (पाले), वह कोई ब्रह्मचर्य नहीं है। पाँचों इन्द्रिय के विषयों को... काम, भोग कल कहा था न? काम अर्थात् स्पर्श और रसेन्द्रिय तथा घ्राण, आँख और कान, वह भोग। इन पाँचों इन्द्रिय के विषयों की ओर के झुकाव को छोड़कर अनीन्द्रिय ऐसा जो भगवान आत्मा... आहाहा! उसके सन्मुख होकर उसमें रमणता करना, इसका नाम ब्रह्मचर्य है। आहाहा! यह तो शरीर से ब्रह्मचर्य पाले तो (माने कि) हम बालब्रह्मचारी हो गये। ऐसा नहीं है, यहाँ तो कहते हैं। बालब्रह्म तो वह है कि जिसे आनन्द की रमणता बालक में से जिसे प्रगट हुई है। आहाहा! छोटी उम्र में से, देह की छोटी उम्र; देह की। आत्मा तो अनादि अनन्त है। वह आत्मा अनाकुल आनन्द का नाथ, उसकी मिठास के वेदन में बालपने से जिसे अन्तर में रमणता जगी है, उसे यहाँ बालब्रह्मचारी कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं कि ऐसा जो धर्म, आनन्दस्वरूप भगवान दस प्रकार का धर्म, उस आनन्द की रमणता (होना), वह दस प्रकार का धर्म है। उसे तीन लोक के अधिपति जिसे स्तवन करते हैं। ऐसे दस प्रकार के धर्म में किसे हर्ष नहीं होगा? आहाहा! किसे उसके आत्मा के स्वभाव में झुकाव नहीं होगा? पर के झुकाव में से कौन नहीं हटेगा? ऐसा जो धर्म वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा... यह दस प्रकार का धर्म वह मुनिधर्म की व्याख्या है परन्तु आंशिक चौथे और पाँचवें में भी होता है। यह मुख्य दस धर्म चारित्र के हैं, उसके यह भेद हैं। निर्विकल्प शान्ति। आहाहा! विकल्परहित भगवान आत्मा निर्विकल्प चीज है, उसकी अन्दर में निर्विकल्पता की रमणता होना, जैसा वह निर्विकल्पस्वरूप है, वैसी ही रमणता—निर्विकल्पता पर्याय में होना। आहाहा! ऐसी बातें हैं। इसका नाम चारित्र के दस धर्म कहा जाता है। समझ में आया? यह ब्रह्मचर्य (हुआ)।

अपने यहाँ वेदना का आया न? पूरा हो गया है?

मुमुक्षु : शुरुआत ही हुई है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ठीक! वेदना का भय। आहाहा! जिसे यह शारीरिक सुख-दुःख की कल्पना का वेदन, वह तो जहर का वेदन है। आहाहा! दुःख का वेदन है। उस धर्मी

को कहते हैं कि जिसे आत्मा शुद्ध चैतन्यघन उसका जिसे आनन्द का सागर—सत्ता ऐसी जिसकी सत्ता का स्वीकार दृष्टि में हुआ, उसे इन शारीरिक वेदनाओं का भय नहीं होता कि यह रोग होगा तो क्या होगा ? क्षय (टीबी) होगा तो क्या होगा ? समझ में आया ? क्योंकि ज्ञानी को अन्तर में आनन्दस्वरूप प्रभु वह जिसे वेदनयोग्य और वेदन करनेवाला मैं, और आनन्द वेदनयोग्य, वह मेरी वेदना है। अरे ! ऐसी बातें हैं। आहाहा ! यह कहा।

अभेदस्वरूप वर्तते हुवे वेद्य-वेदक के बल से... अभेद अर्थात् ? आत्मा ही आनन्द का वेदन करनेवाला और आनन्द का वेदन उसका। आहाहा ! अभेद कहा न ? भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति, वह स्वयं अतीन्द्रिय आनन्द की पर्याय को वेदन करे और वेदनयोग्य वह अतीन्द्रिय आनन्द की पर्याय। वेदन करनेवाला भी आत्मा और वेदनयोग्य उसकी—आत्मा की पर्याय। आहाहा ! (ऐसी वस्तुस्थिति के बल से)... आहाहा ! क्या कहते हैं यह ? ऐसी जो वस्तु जो चैतन्य भगवान, उसकी जहाँ दृष्टि पड़ी वहाँ और उसका जो अनुभव हुआ, उसके बल से। आहाहा !

[यद् एकं अचलं ज्ञानं स्वयं अनाकुलैः सदा वेद्यते] एक अचल ज्ञान ही... आहाहा ! ज्ञान अर्थात् आत्मा। शुद्ध आत्मा, अचल ज्ञान, कभी चलित नहीं, ऐसी ध्रुव चीज भगवान नित्यानन्द प्रभु, आहाहा ! ऐसा अचल आत्मा ही स्वयं निराकुल... प्रभु स्वयं तो निराकुल आत्मा है। आहाहा ! उसमें आकुलता के विकल्प का प्रवेश नहीं है। वस्तु में आकुलता है ही नहीं। आहाहा ! अब ऐसी बातें। निराकुल भगवान आत्मा का जिसे निराकुलता का वेदन है, वह स्वयं निराकुल पुरुषों के द्वारा... आहाहा ! निराकुल ऐसा भगवान आत्मा और जिस पर्याय में निराकुलवाला पुरुष—आत्मा है, उससे वह वेदन में आता है। अरे ! ऐसा काम है, हों ! भाई ! आहाहा !

पाँच इन्द्रियाँ और उनकी ओर का विकल्प, उससे हटकर और अस्ति तत्त्व जो भगवान पूर्णानन्द की अस्ति—सत्ता, उसके अवलम्बन में जो गया, आहाहा ! उसे एक ही ज्ञान ही स्वयं निराकुल है, उसे वह वेदता है। ऐसी बात है। इसका नाम धर्म है। रागादि और पुण्यादि के परिणाम, वे कोई धर्म नहीं, वे तो आकुलता है और भगवान आत्मा निराकुल है। वह निराकुलस्वरूप भगवान... आहाहा ! आठ वर्ष की बालिका भी यदि सम्यग्दर्शन पाती है, आहाहा ! अरे ! तिर्यच, ढाई द्वीप के बाहर असंख्य तिर्यच भगवान ने कहे हैं। सिंह

और बाघ, नाग, बन्दर, हाथी और घोड़े असंख्य समकिती बाहर हैं। आहाहा! आता है प्रतिक्रमण में, स्थानकवासी के खामणां में। ढाई द्वीप के बाहर असंख्यात हैं। आहाहा! वह तिर्यच का शरीर होने पर भी भगवान आत्मा अन्दर आत्मा के आनन्द को जाना है और अनुभव किया है, इसलिए वह उसे निराकुलता का निराकुल पुरुषों द्वारा निराकुलता का वेदन है। जिसे आकुलता—विकल्प का जाल वर्तता रहता है, आहाहा! वह निराकुल पुरुष नहीं है। निराकुल पुरुष नहीं अर्थात् परिणति में निराकुल पुरुष नहीं, ऐसा। वस्तु तो निराकुल है ही, परन्तु पर्याय में जिसे निराकुलता प्रगट हुई है, वह उसे अनुभव करता है परन्तु जिसे बाहर की खलबलाहट, पुण्य और पाप के विकल्प के जाल में उलझ गया है, आहाहा! वह तो दुःख को वेदता है। यह दुःख का वेदन, वह आत्मा का स्वरूप नहीं है। आहाहा!

शरीर और संयोग लाख, करोड़ प्रतिकूल हों, रोग हो, क्षय रोग हो। आहाहा! सोलह रोग हो, सातवें नरक के नारकी को तो सोलह रोग पहले से है। आहाहा! परन्तु जब वह अन्तर में गया हो तब... सातवें (नरक में) मिथ्यादृष्टि जाता है, समकिती नहीं जाता और वहाँ फिर समकित पाता है। सातवें नरक का नारकी। आहाहा! वह निराकुल आत्मा, वह निराकुल पर्याय से वेदता है। आहाहा! सातवाँ नरक किसे कहना, बापू! आहाहा! जिसकी शीत की वेदना, एक शीत का इतना जरा अंश यहाँ लावे तो दस हजार योजन के लोग सर्दों में मर जाएँ। ऐसी वहाँ सर्दी है। ऐसी सर्दी में उत्पन्न हुआ परन्तु जब भगवान शान्त आनन्दमूर्ति प्रभु ऐसी ठण्डक के गर्भ में अन्दर जाता है। आहाहा! बर्फ की शिला जैसे शीतल होती है, वैसे भगवान शीतल, आनन्दस्वरूप शीतल, ठण्डा, ठण्डा आत्मा निराकुल है। उस निराकुल का निराकुल पुरुषों द्वारा वेदन हो सकता है। आहाहा! विकल्प के जाल में उलझे हुए का यह काम नहीं है, कहते हैं। सूक्ष्म बात, भाई! आहाहा!

कहते हैं कि सदा स्वयं निराकुल पुरुषों के द्वारा (-ज्ञानियों के द्वारा) सदा वेदन में आता है,... आहाहा! इसका अर्थ यह हुआ कि प्रथम तुझे सम्यग्दर्शन प्रगट करना पड़ेगा। 'लाख बात की बात निश्चय उर लाओ' आता है न छहढाला में? 'छोड़ी जगत द्वंद फंद निज आतम उर ध्याओ' इस आत्मा का ध्यान करने से उसे आनन्द आता है। क्योंकि आत्मा आनन्दस्वरूप है। इसलिए निराकुल पुरुषों द्वारा वह आनन्द वेदन में आता है। आकुलतावाले जीवों को वह आनन्द नहीं होता। उस विकल्प की खलबलाहट, यह किया और यह किया और यह किया, माँग (की), आहाहा! दुनिया को अनुकूल रहने के

लिये मक्खन लगावे और ऐसा करे और वैसा करे, विकल्प के जाल में फँस गये हैं। आहाहा! वह मिथ्यादृष्टि है, कहते हैं। आहाहा!

जिसने विकल्प का जाल तोड़ा है और निराकुल पुरुष है, उसके द्वारा निराकुल आनन्द वेदन में आता है। उसे वह वेदना है। आहाहा! ज्ञानियों को ज्ञान वेदन योग्य है। है? यह एक ही वेदना (ज्ञानवेदन) ज्ञानियों के है। (आत्मा वेदक है और ज्ञान वेद्य है।) [ज्ञानिनः अन्या आगत-वेदना एव हि न एव भवेत्] ज्ञानी के दूसरी कोई आगत (-पुद्गल से उत्पन्न) वेदना... आहाहा! नमक छिड़के और फिर अग्नि डाले, (उसकी) वेदना धर्मी को नहीं है। आहाहा! क्योंकि उसकी ओर का उसका लक्ष्य ही छूट गया है। आहाहा! और जहाँ लक्ष्य गया है, वह तो निराकुल आनन्द का नाथ है। आहाहा! सूक्ष्म बात, बापू! भगवन्त! तेरा स्वरूप ही कोई अलग जाति है, भाई! आहाहा! लगे निश्चय, परम सत्य कठिन लगे परन्तु वस्तु तो ऐसी है। आहाहा!

धर्मी को दूसरी कोई आयी हुई वेदना नहीं होती। आहाहा! निर्धनता आ पड़ी, क्षय का रोग आदि आ पड़ा, आहाहा! वह वेदना धर्मी को नहीं है। उसका वह ज्ञाता है और ज्ञान और आनन्द का वेदन करनेवाला है। अरे! ऐसी बातें हैं। यह दस धर्म पूर्ण होते हैं। कहते हैं कि इन दस धर्म के आनन्द का वेदन, आहाहा! (उसमें) किसे हर्ष नहीं आयेगा? ऐसा कहते हैं। जो दस धर्म, त्रिलोक के बड़े तीन लोक के अधिपति भी जिसकी—दस धर्म की स्तुति करते हैं, आहाहा! वह धर्म किसे हर्ष नहीं देगा? उस धर्म में किसे हर्ष नहीं आयेगा? कहते हैं। आहाहा! अब ऐसी बातें। यह तो क्रिया करो और व्रत करो और अपवास करो। वह तो आकुलता है। आहाहा! उस आकुलतारहित निराकुल पुरुषों द्वारा निराकुलता वेदन में आती है। आहाहा! ऐसी बातें अगमनिगम की बातें! साधारण लोगों को तो बेचारे बाहर के विकल्प के जाल में उलझ गये हैं। यह किया और इसे अनुकूल किया और इसे मक्खन लगाया और इसे अनुकूल होवें तो हम बाहर आवें—प्रसिद्धि प्राप्त हो, (ऐसी) आकुलता के जाल में उलझ गये। परन्तु निराकुल भगवान आत्मा, वह वेदना एक ही है। धर्मी को दूसरी वेदना नहीं होती।

[तद् भीः कुतः] इसलिए उसे वेदना का भय कहाँ से हो सकता है? क्यों? 'सः' वह धर्मी-ज्ञानी आत्मा 'सः स्वयं सततं निश्शंकः सहजं ज्ञानं सदा विन्दति' वह तो स्वयं निरन्तर निःशंक वर्तता हुआ सहज (आत्मा) ज्ञान का सदा अनुभव

करता है। आहाहा! ज्ञान का शुद्ध परिणमन हुआ, वह ज्ञान के वेदन में आता है। आहाहा! राग का, पुण्य का, दया, दान का परिणमन होना, वह सब दुःख का वेदन है। ऐसी बातें लोगों को कठिन पड़ती है। क्या हो? इसे करना पड़ेगा, भाई! जनम-मरण के दुःख... आहाहा! चारों ओर भ्रमता है चक्कर पूरा। वह कुम्हार का चाक घूमता है, वैसे चार गति में घूमता है। यह एक मनुष्य हो और फिर वापस पशु हो और फिर नरक में जाए। आहाहा! धर्मी तो आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूपी वह मैं, ऐसा अनुभव हुआ है। इसलिए वह तो स्वयं निरन्तर निःशंक वर्तता हुआ सहज ज्ञान (आत्मा) का सदा अनुभव करता है। ज्ञान अर्थात् आत्मा। आहाहा!

भावार्थ - सुखदुःख को भोगना वेदना है। ज्ञानी के अपने एक ज्ञानमात्र स्वरूप का ही उपभोग है। भारी कठिन काम। धर्मी उसे कहते हैं कि जिसे आत्मा आनन्दस्वरूप की दृष्टि और अनुभव हुआ। उसे तो एक आनन्द का ही वेदन होता है, ज्ञान का ही वेदन (होता है)। आहाहा! एक अपने ज्ञानमात्र स्वरूप का-आत्मा का ही अनुभव है। वह पुद्गल से होनेवाली वेदना को वेदना ही नहीं समझता, ... आहाहा! शरीर में रोग, दरिद्रता (हो), क्षय रोग, दारुण रोग प्रगट हों, उन्हें ज्ञानी रोग नहीं जानता। वह तो ज्ञानी के ज्ञान में ज्ञेयरूप से (ज्ञात होते हैं)। आहाहा! ऐसा मार्ग। लोगों को तो क्या करे? अभी लोगों को सुनने को नहीं मिलता। बाहर का यह करो, यह करो, यह करो। करो और मरो। आहाहा! भाई ने नहीं कहा? सोगानी। करना, वह मरना है। राग को करना, यह राग करो, ऐसा करो, यह करो, राग को करो, वह तो मरना है। सूक्ष्म बात, भाई! आहाहा!

उसे उभारने का प्रभु का मार्ग निराकुल आनन्द में जाना, जहाँ निराकुल भगवान विराजता है। आहाहा! उसके समीप में जाना और जाने पर जो पर्याय में आनन्द आवे, वह एक ही वेदना ज्ञानी को है। दूसरी लाख, करोड़ वेदना, प्रतिकूलता, निर्धन हो, खाने को मिले नहीं, ऐसी निर्धनता आ जाए तो भी समकिति है। उसकी वेदना उसे नहीं है। आहाहा! और धर्मी को अरबों के बड़े राज मिले, उसकी वेदना ज्ञानी को नहीं है। वह उसकी ओर के वेदन को तो दुःख जानकर, जहर जानकर छोड़ देता है। छोड़ता जाता है। अन्दर आत्मा का आदर करता जाता है। आहाहा! इसलिए ज्ञानी के वेदनाभय नहीं है। वह तो सदा निर्भय वर्तता हुआ... आहाहा! पूरे सिद्धान्त का सार यह है। ज्ञान का अनुभव करता है।

कलश - १५७

अब अरक्षाभय का काव्य कहते हैं:-

(शार्दूलविक्रीडित)

यत्सन्नाश-मुपैति तन्न नियतं व्यक्तेति वस्तुस्थिति-
ज्ञानं सत्स्वय-मेव तत्किल ततस्त्रातं किमस्यापरैः ।
अस्यात्राणमतो न किञ्चन भवेत्तद्भीः कुतो ज्ञानिनो,
निश्शङ्कः सततं स्वयं स सहजं ज्ञानं सदा विन्दति ॥१५७॥

श्लोकार्थ : [यत् सत् तत् नाशं न उपैति इति वस्तुस्थितिः नियतं व्यक्ता] जो सत् है, वह नष्ट नहीं होता, ऐसी वस्तुस्थिति नियमरूप से प्रगट है। [तत् ज्ञानं किल स्वयमेव तत्] यह ज्ञान भी स्वयमेव सत् (सत्स्वरूप वस्तु) है, (इसलिए नाश को प्राप्त नहीं होता), [ततः अपरैः अस्य त्रातं किं] इसलिए पर के द्वारा उसका रक्षण कैसा? [अतः अस्य किञ्चन अत्राणं न भवेत्] इस प्रकार (ज्ञान निज से ही रक्षित है इसलिए) उसका किञ्चित्मात्र भी अरक्षण नहीं हो सकता [ज्ञानिनः तद्-भीः कुतः] इसलिए (ऐसा जाननेवाले) ज्ञानी को अरक्षा का भय कहाँ से हो सकता। [सः स्वयं सततं निश्शङ्कः सहजं ज्ञानं सदा विन्दति] वह तो स्वयं निरन्तर निःशङ्क वर्तता हुआ सहज ज्ञान का सदा अनुभव करता है।

भावार्थ : सत्तास्वरूप वस्तु का कभी नाश नहीं होता। ज्ञान भी स्वयं सत्ता-स्वरूप वस्तु है; इसलिए वह ऐसा नहीं है कि जिसकी दूसरों के द्वारा रक्षा की जाए तो रहे, अन्यथा नष्ट हो जाये। ज्ञानी ऐसा जानता है, इसलिए उसे अरक्षा का भय नहीं होता; वह तो निःशङ्क वर्तता हुआ स्वयं अपने स्वाभाविक ज्ञान का सदा अनुभव करता है।॥१५७॥

कलश - १५७ पर प्रवचन

१५७ आया न? अरक्षाभय। मेरा कोई रक्षण होवे तो मैं रह सकूँ, ऐसा माननेवाला (अज्ञानी है)। गढ़, किला हो, पैसा हो, नौकर अच्छे हों, मुझे रक्षा करे तो मैं रह सकूँ, ऐसी पीड़ा, ऐसा भाव ज्ञानी को नहीं होता। त्रिकाल रक्षास्वरूप ही भगवान है। उसे मैं रखूँ तो रक्षा

हो, ऐसी वह चीज़ नहीं है। आहाहा!

यत्सन्नाश-मुपैति तन्न नियतं व्यक्तेति वस्तुस्थिति-
ज्ञानं सत्स्वय-मेव तत्किल ततस्त्रातं किमस्यापरैः।
अस्यात्राणमतो न किञ्चन भवेत्तद्भीः कुतो ज्ञानिनो,
निश्शङ्कः सततं स्वयं स सहजं ज्ञानं सदा विन्दति ॥१५७॥

आहाहा! 'यत् सत्' 'यत्' जो सत् है, वह 'तत् नाशं न उपैति' भगवान् आत्मा त्रिकाली सत् है। आहाहा! है, सत् है, वह नाश नहीं होता। है, उसका नाश नहीं। सत् है, प्रभु। आहाहा! अनन्त गुण से विराजमान प्रभु जो सत् है, वह नष्ट नहीं होता-ऐसी वस्तुस्थिति नियमरूप से... निश्चयपने प्रगट है। आहाहा! बाहर से रक्षा करूँ तो मेरा आत्मा रहे, ऐसे सब साधन रखूँ, आहाहा! ऐसा धर्मी को नहीं होता। मेरा भगवान् तो सत्ता से आरक्षित ही है। पर से रक्षा करे, ऐसा है ही नहीं। पर के महल, मकान, नौकर-चाकर, पुलिस, बन्दूक, ऐसे साधन हो तो मेरी रक्षा हो, (ऐसा माननेवाला) मूढ़ है। आहाहा! भारी कठिन, दुनिया से (अलग प्रकार है।)

ऐसी वस्तुस्थिति नियमरूप से... निश्चयपने प्रगट है। सत् प्रभु शाश्वत् नित्यानन्द प्रभु सदा प्रगट है। वस्तु है, वह वस्तु प्रगट ही है। अनादि है, अनन्त काल से है, ऐसी की ऐसी है। आहाहा! [तत् ज्ञानं किल स्वयमेव तत्] यह ज्ञान (आत्मा) भी स्वयमेव सत् (सत्स्वरूप वस्तु) है... जैसे कोई भी सत् हो, उसका नाश नहीं होता, वैसे आत्मा भी सत् है, कहते हैं। आहाहा! भारी काम, भाई! वीतरागमार्ग बहुत अलौकिक है, बापू! वीतरागभाव से वह वीतरागपना प्रगट होता है। आहाहा! राग की क्रिया से वह वीतरागपना प्रगट नहीं होता, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ज्ञान भी स्वयंमेव सत्स्वरूप वस्तु है। चीज़ नाश नहीं पाती।

[ततः अपरैः अस्य त्रातं किं] इसलिए पर के द्वारा उसका रक्षण कैसा? 'त्रातं' अर्थात् रक्षण। स्वयं सत् अविनाशी भगवान् है, उसे पर द्वारा रक्षा, यह क्या? आहाहा! ऐसी बातें। आठ वर्ष की बालिका भी सम्यक्त्व पावे तो यह होता है, ऐसा कहते हैं। सत् भगवान् वस्तु है। आहाहा! मेरा आनन्द तो मुझमें है। वह आनन्द सत् है, वह कब नाश हो? आहाहा! 'अपरैः अस्य त्रातं किं' पर के द्वारा उसका रक्षण कैसा? आहाहा!

मैं आत्मा दुर्ग-किला हूँ। उसे रक्षण क्या? उसमें किसी का प्रवेश नहीं। आहाहा! जिसमें विकल्प का प्रवेश नहीं, ऐसा भगवान दुर्ग-किला, उसकी मैं रक्षा करूँ तो रहे, ऐसा नहीं है। अरे! ऐसी बातें। पर्यूषण में तो अपवास करना और यह करना और वह करना, ऐसा होवे तो समझ में तो आये। यह तो विकल्प है, बापू! राग है। यह अपवास-बपवास तपस्या नहीं है। तपस्या तो चैतन्यमूर्ति को तपाना, अन्दर प्रगट करना। जैसे सोने को गेरु लगने से सोना शोभता है, वैसे भगवान आनन्द के नाथ में एकाग्र होकर आनन्द की शोभा अन्दर प्रगट हो, उसे उपवास और तप कहते हैं। बाकी तो लंघन है। आहाहा!

‘अपरै: अस्य त्रातं किं’ भगवान के रक्षण के लिये दूसरे के शरण की क्या आवश्यकता? आहाहा! इस प्रकार (ज्ञान निज से ही रक्षित है इसलिए)... ज्ञान अर्थात् आत्मा। इस प्रकार (ज्ञान निज से ही रक्षित है, इसलिए) उसका किंचित्मात्र भी अरक्षण नहीं हो सकता... आहाहा! किंचित् भी उसकी रक्षा करना, ऐसा है नहीं। वह तो त्रिकाल रक्षित है। जिसकी दृष्टि में नित्यानन्द प्रभु आया, उसे अब रक्षा किसकी करूँ? किसकी रक्षा से मैं रहूँ? यह है नहीं। आहाहा! किंचित्मात्र भी अरक्षण नहीं हो सकता... [ज्ञानिनः तद्-भीः कुतः] इसलिए (ऐसा जाननेवाले) ज्ञानी को... ज्ञानी अर्थात् धर्मी, सम्यग्दृष्टि चौथे गुणस्थान से। यह आ गया है, नहीं? ज्ञानी किसे कहना? अविरति से (लेकर) सबको ज्ञानी कहना। वे और ऐसा कहें कि ज्ञानी नहीं कहा जाता। निर्विकल्प ध्यान हो, उसे ज्ञानी कहा जाता है। इसलिए यह बाहर की क्रिया करे और निर्विकल्प हो। धूल भी नहीं है। आहाहा! क्या हो? ज्ञानी अर्थात् धर्मी को ऐसा जानने से अर्थात् अरक्षण हो सकता नहीं, ऐसा मैं हूँ। जरा भी अरक्षण नहीं। रक्षण होवे तो मैं रहूँ, ऐसा नहीं। उसका अरक्षण नहीं हो सकता। आहाहा!

वह तो स्वयं निरन्तर निःशंक वर्तता हुआ... जो वस्तु अखण्ड आनन्दस्वरूप ध्रुव है, उसे जिसने पकड़ा है और अनुभव किया है, (वह) स्वयं निरन्तर निःशंक वर्तता हुआ... अपनेपन में निरन्तर निःशंक वर्तता हुआ। सहज आत्मा को सदा वेदता है। आहाहा! सदा आत्मा को अनुभव करता है, सदा अनुभव करता है। चाहे जैसे प्रसंग में होवे तो उसे तो आत्मा का ही वेदन मुख्य है। रागादि हो, उनका वेदन नहीं परमात्मा को। दृष्टि की प्रधानता से कथन है न। वेदन है परन्तु वह भिन्न है। आनन्द का वेदन है, वह आत्मा

का है। ज्ञानी को राग आवे, उसका वेदन है परन्तु वह वेदन दुःखरूप है। जितना आत्मा के सन्मुख होकर आनन्द प्रगट हुआ, वह सुखरूप है और जितना पर के लक्ष्य से राग हो, वह दुःख है। दोनों का वेदन है। परन्तु यहाँ तो उस वेदन को गौण करके वह आत्मा के आनन्दस्वरूप का ही वेदन है। आहाहा! काम बहुत कठिन।

वह तो निरन्तर निःशंक वर्तता हुआ... निर्भय वर्तता हुआ, स्वाभाविक आत्मा को सदा अनुभव करता है। आहाहा! 'सदा' शब्द पड़ा है न। प्रत्येक में सदा है, प्रत्येक में। 'स्वयं सततं निःशंकः सहजं ज्ञानं सदा विन्दति' आहाहा! क्योंकि आत्मा जो सम्यक् दर्शन को प्राप्त हुआ, तब उसकी पर्याय में आनन्द का वेदन (आया)। 'सदा विन्दति' उसे ही वह वेदता और अनुभव करता है, ऐसा कहते हैं। जिसे ध्रुव पर दृष्टि जाती है, उसे पर्याय में आनन्द का वेदन आता है, तब उसकी दृष्टि ध्रुव के ऊपर है, ऐसा निर्णय होता है। आहाहा! वस्तु है, भगवान पूर्णानन्द का नाथ, उस पर दृष्टि गयी, पर्याय ने उसे स्वीकार किया कि मैं तो अखण्ड आनन्दस्वरूप हूँ। ऐसा स्वीकार किया, उसकी पर्याय में आनन्द आता है, उसका नमूना आता है। वह आनन्द आवे, वह उसका फल है। आनन्द न आवे और दृष्टि ध्रुव की हुई है, यह बात मिथ्या है। आहाहा! अब ऐसी बातें। अलकमलक की नहीं परन्तु अगमगम्य की (बातें हैं)। आहाहा! ऐसा मार्ग है, बापू!

सदा अनुभव करता है। सदा। आहाहा! अर्थात् कि आनन्द, ज्ञानस्वरूप है—ऐसा जो अनुभव हुआ, वह भले उपयोग राग में जाए तो भी उसका वेदन ज्ञान है, वहाँ तो अकम्परूप से पड़ा है। ज्ञान के आनन्द से हटता नहीं। आहाहा! ऐसी बातें अब धर्म के नाम से। वे सीधी सट्ट (थी)। स्थानकवासी में कहे, सामायिक करो, प्रौषध करो, प्रतिक्रमण करो, सूर्यास्त से पूर्व भोजन करो, अमुक त्यागा, यह त्याग किया, यह त्यागो। मन्दिरमार्गी में भक्ति करो, पूजा करो, यात्रा करो। दिगम्बर में वस्त्र छोड़ो। आहाहा! परन्तु मूल बात की खबर बिना तेरे (त्याग किसका?) आहाहा!

यहाँ तो यह कहा। भावार्थ : सत्तास्वरूप वस्तु का कभी नाश नहीं होता। है, उसका कभी नाश नहीं होता; है, वह न हो - ऐसा कभी नहीं होता। भगवान आत्मा है। है, वह कभी नहीं—ऐसा नहीं होता। है, वही नहीं होगा? आहाहा! वस्तु भगवान आत्मा सत्ता सत् है। ज्ञान भी स्वयं सत्ता-स्वरूप वस्तु है;... पहला सिद्धान्त का स्थापन

किया कि सत्तास्वरूप वस्तु का कभी नाश नहीं होता। है, उसका अभाव कभी नहीं होता। यह तो सिद्धान्त कहा। वैसे आत्मा भी स्वयं सत्तास्वरूप वस्तु है। आहाहा! अरेरे! यह शरीर, वाणी और मन ये सब जड़ मिट्टी, बाहर की सब चमक, अग्नि है सब। उसके लक्ष्य से तो ज्वाला सुलगती है। उसके लक्ष्य से तो ज्वाला-राग (सुलगता है)। भगवान के लक्ष्य से तो अरागी आनन्द होता है। आहाहा! है ?

आत्मा, ज्ञान अर्थात् आत्मा। ज्ञान भी स्वयं सत्ता-स्वरूप वस्तु है; इसलिए वह ऐसा नहीं है कि जिसकी दूसरों के द्वारा रक्षा की जाए तो रहे, ... दूसरों के द्वारा रक्षा की जावे तो रहे, अन्यथा नष्ट हो जाए। ऐसी सत्ता-वस्तु नहीं है। परन्तु कहाँ उसकी दृष्टि ही जहाँ पर्याय और राग पर अनादि की है। अनन्त बार साधु हुआ, दिगम्बर मुनि, हों! तो भी दृष्टि दया, दान और व्रत, भक्ति और इस विकल्प और पर्याय पर दृष्टि है। मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! महासत्ता प्रभु है, अर्थात् कि महा अनन्त गुणरूप होनेरूप चीज है। आहाहा! पर से नहीं होनेरूप, स्व से होनेरूप है, ऐसी चीज पर दृष्टि की नहीं। आहाहा!

ज्ञानी ऐसा जानता है... यह क्या कहा ? कि कोई रक्षा करनेवाला होवे तो मैं रहूँ, ऐसी चीज मैं नहीं हूँ। मैं तो सत्ता त्रिकाली वस्तु हूँ। आहाहा! रक्षित ही है, उसकी रक्षा करो तो रक्षित है, ऐसा है नहीं। आहाहा! ज्ञानी ऐसा जानता है, इसलिए उसे अरक्षा का भय नहीं होता; वह तो निःशंक वर्तता हुआ स्वयं अपने स्वाभाविक ज्ञान का... अर्थात् आत्मा का। ज्ञान का अर्थात् कि राग और पुण्य का नहीं परन्तु ज्ञान का सदा अनुभव करता है। आहाहा! राग से भिन्न भेदज्ञान हुआ है। वह अब भेदज्ञान है, वह अभेद नहीं होता। सदा भेदज्ञानरूप वर्तता है। आहाहा! अब ऐसी बातें, भाई! लोगों को कठिन पड़ती है। अरक्षा का भय नहीं होता; वह तो निःशंक वर्तता हुआ स्वयं अपने स्वाभाविक (आत्मा) ज्ञान का सदा अनुभव करता है। अब अगुप्ति।

कलश - १५८

अब अगुप्तिभय का काव्य कहते हैं:-

(शार्दूलविक्रीडित)

स्वं रूपं किल वस्तुनोऽस्ति परमा गुप्तिः स्वरूपे न य-
च्छक्तः कोऽपि परः प्रवेष्टुमकृतं ज्ञानं स्वरूपं च नुः ।
अस्यागुप्तिरतो न काचन भवेत्तद्भीः कुतो ज्ञानिनो,
निश्शङ्कः सततं स्वयं स सहजं ज्ञानं सदा विन्दति ॥१५८॥

श्लोकार्थ : [किल स्वं रूपं वस्तुनः परमा गुप्तिः अस्ति] वास्तव में वस्तु का स्व-रूप ही (निजरूप ही) वस्तु की परम 'गुप्ति' है [यत् स्वरूपे कः अपि परः प्रवेष्टुम् न शक्तः] क्योंकि स्वरूप में कोई दूसरा प्रवेश नहीं कर सकता; [च] और [अकृतं ज्ञानं नुः स्वरूपं] अकृतज्ञान (-जो किसी के द्वारा नहीं किया गया है, ऐसा स्वाभाविक ज्ञान) पुरुष का अर्थात् आत्मा का स्वरूप है; (इसलिए ज्ञान आत्मा की परम गुप्ति है।) [अतः अस्य न काचन अगुप्तिः भवेत्] इसलिए आत्मा की किञ्चित्मात्र भी अगुप्तता न होने से [ज्ञानिनः तद्-भीः कुतः] ज्ञानी को अगुप्ति का भय कहाँ से हो सकता है? [सः स्वयं सततं निश्शङ्कः सहजं ज्ञानं सदा विन्दति] वह तो स्वयं निरन्तर निःशङ्क वर्तता हुआ सहज ज्ञान का सदा अनुभव करता है।

भावार्थ : 'गुप्ति' अर्थात् जिसमें कोई चोर इत्यादि प्रवेश न कर सके ऐसा किला, भोंयरा (तलघर) इत्यादि; उसमें प्राणी निर्भयता से निवास कर सकता है। ऐसा गुप्त प्रदेश न हो और खुला स्थान हो तो उसमें रहनेवाले प्राणी को अगुप्तता के कारण भय रहता है। ज्ञानी जानता है कि-वस्तु के निज स्वरूप में कोई दूसरा प्रवेश नहीं कर सकता, इसलिए वस्तु का स्वरूप ही वस्तु की परम गुप्ति अर्थात् अभेद्य किला है। पुरुष का अर्थात् आत्मा का स्वरूप ज्ञान है; उस ज्ञानस्वरूप में रहा हुआ आत्मा गुप्त है क्योंकि ज्ञानस्वरूप में दूसरा कोई प्रवेश नहीं कर सकता। ऐसा जाननेवाले ज्ञानी को अगुप्तता का भय कहाँ से हो सकता है? वह तो निःशङ्क वर्तता हुआ अपने स्वाभाविक ज्ञानस्वरूप का निरन्तर अनुभव करता है ॥१५८॥

कलश - १५८ पर प्रवचन

स्वं रूपं किल वस्तुनोऽस्ति परमा गुप्तिः स्वरूपे न य-
 च्छक्तः कोऽपि परः प्रवेष्टुमकृतं ज्ञानं स्वरूपं च नुः ।
 अस्यागुप्तिरतो न काचन भवेत्तद्भीः कुतो ज्ञानिनो,
 निश्शङ्कः सततं स्वयं स सहजं ज्ञानं सदा विन्दति ॥१५८॥

क्या कहते हैं ? आहाहा ! [किल स्वं रूपं वस्तुनः परमा गुप्तिः अस्ति] वास्तव में... वस्तु भगवान आत्मा, वह स्व-रूप ही (निजरूप ही) वस्तु की परम 'गुप्ति' है... उसे कोई छीन लेगा, कोई चोर लेगा, ऐसी वह चीज़ नहीं है। आहाहा ! अरे ! मेरी वस्तु कोई चोर लेगा। परन्तु तू गुप्त ही है। गुप्त है, उस किला-गुप्त में किसी का प्रवेश नहीं है। आहाहा ! वह मुझे कोई हर ले जाएगा, छीन लेगा, मुझे चोर लेगा। परन्तु तुझे कौन (चोर कर ले जाए) ? आहाहा ! बाहर की वस्तु है, वह तो इसकी नहीं और उसमें यह स्वयं नहीं; इसलिए उसमें कुछ प्रश्न है नहीं। आहाहा ! वास्तव में वस्तु का स्वरूप वस्तु की परम 'गुप्ति' है... अर्थात् कि अन्तर से गुप्त करूँ, (ऐसा नहीं है)। उसे कोई छीन ले, इसलिए मैं मेरी गुप्ति करूँ, गुप्त हो जाऊँ—ऐसा नहीं है। वह तो गुप्त ही है। आहाहा ! अरे.. अरे.. ! ऐसी बातें।

यह तो हड्डियाँ, चमड़ी है यह तो। यह कहीं आत्मा नहीं है। अन्दर कर्म है, वह कहीं आत्मा नहीं है तथा दया, दान के विकल्प उठें, वे कहीं आत्मा नहीं है, वे तो राग—अनात्मा है। आहाहा ! अन्दर जो आत्मा है, वह तो त्रिकाली गुप्तस्वरूप है। गुप्त किला है, दुर्ग-किला है। आहाहा ! मकान में लोहे के कठोर चद्दर डाले हों, उस किले में कोई प्रवेश नहीं कर सकता। पवन प्रवेश नहीं कर सकती तो फिर चोर कहाँ से प्रवेश करे ? लोहे के होते हैं न बड़े चद्दर... चद्दर। उसी प्रकार यह भगवान तो दुर्ग—किला है। आहाहा ! जिसमें विकल्प का प्रवेश नहीं तो कोई उसे छीन ले या कोई उसे हर ले या कोई उसे उसमें से ले जाए (ऐसा नहीं है)। आहाहा ! अब ऐसी व्याख्या। पर्युषण के दिनों में तो उपवास करो, यह करो, वह करो, सूर्यास्त से पूर्व (भोजन करो)। दस उपवास करे तो ओहोहो ! (हो जाता है)। अब वह तो लंघन है, सुन न ! आत्मा अन्दर गुप्त पड़ा है, उसकी तो तुझे खबर नहीं

और बाहर में विकल्प के जाल में रुककर (मानता है कि) मुझे धर्म हो गया। मिथ्यात्व का पोषण है। आहाहा! कठिन काम।

कहते हैं कि मुनि धर्मी ऐसा जानते हैं, मेरी चीज़ है, वह गुप्त ही है। मुझे कोई छीन ले, हर ले, चोर ले—ऐसी चीज़ ही नहीं है। आहाहा! वह आता है न प्रवचनसार में, नहीं? ऐसा कि यह चोर है, इससे अब मैं गुप्त होता हूँ। अमृतचन्द्राचार्य, प्रवचनसार में आता है। मैंने मेरा नाथ आत्मा देखा (जाना), अनुभव किया है तो यह सब रागादि चोर हैं, इनसे मुझे अब छूटना है और अब स्थिर होता हूँ। प्रवचनसार में है। आहाहा! रागादि चोर, कोई पर चोर नहीं। आहाहा! उनसे बचकर (रहना है)। प्रवचनसार में शुरुआत में है। आहाहा! आचार्यों ने तो गजब काम किया है।

(यहाँ) कहते हैं, जो मेरा स्वरूप है, वह परम गुप्ति ही है, गुप्त ही है। आहाहा! किला बड़ा है, वज्र का किला है, जिसमें कोई प्रवेश नहीं कर सकता, (ऐसा) गुप्त हूँ। आहाहा! दूसरे मुझे देख सके, ऐसा मैं नहीं। आहाहा! मैं मुझे देख सकूँ, ऐसी गुप्त चीज़ है। समझ में आया? दूसरा मुझे देख नहीं सके तो फिर ले सके, यह कहाँ आया? आहाहा! ऐसी बातें हैं। समयसार की बात परम स्वभाव की दृष्टि की बात है। आहाहा! जिसे अनन्त काल में चार गति में भटकते हुए एक समय भी आत्मज्ञान हुआ नहीं। आहाहा! वह आत्मज्ञान यह चीज़ है। जो गुप्त वस्तु है, उसे जिसने दृष्टि में प्राप्त की है... आहाहा! गोपन ही है। उसे गोपन करूँ तो रहे, ऐसा नहीं है। यह गोपन है। आहाहा!

वास्तव में (निजरूप ही) वस्तु की परम 'गुप्ति' है... ऐसा कहा न? क्योंकि स्वरूप में कोई दूसरा प्रवेश नहीं कर सकता;... मेरे स्वरूप में दुर्ग किला वज्र, वज्र का गढ़ है, उसमें पवन प्रवेश नहीं कर सकती तो फिर कोई मनुष्य आ सके, यह तो है नहीं। आहाहा! 'पवन' शब्द से जिसमें राग का विकल्प प्रवेश नहीं कर सकता तो दूसरे उसे ले जाएँ, यह बात है कहाँ? आहाहा!

मुनियों को मेरुपर्वत के साथ ऐसे पछाड़ते हैं। विरोधी देव हो (वह ऐसा करता है)। (मुनि) प्रमाद में हो तब, अप्रमत्तदशा हो तो ले नहीं सकता। छठवें गुणस्थान में विकल्प में हो, (तब) उठाता है। मेरुपर्वत के साथ, धोती धावे (वैसे मुनि को) पछाड़ता है। परन्तु कहते हैं कि मैं तो गुप्त हूँ। मैं (शरीर) कहाँ हूँ? मेरा पछाड़ भी नहीं (और) मुझे किसी

ने पकड़ा भी नहीं। उस आनन्द के सागर में गुप्त में अन्दर पड़ते हैं और यहाँ पछाड़ता है, वहाँ केवल (ज्ञान) पाकर मोक्ष में जाते हैं। आहाहा! वहाँ से अनन्त मोक्ष में गये हैं। मेरुपर्वत के कण-कण से, मेरु ऐसा है न? तो वहाँ कितनी ही जगह बैठने के ठिकाने नहीं हैं, तो भी वहाँ पछाड़ मारते हैं। वहाँ आगे अन्दर गुप्त में रमकर केवलज्ञान पाकर चले जाते हैं। शरीर नीचे पड़ा रहता है, आत्मा ऊपर चला जाता है। आहाहा! कहते हैं कि जिसे किसी ने उठाया भी नहीं और जिसे पछाड़ की नहीं। आहाहा! सुना है यह?

मेरुपर्वत ऐसे खड़ा है न? जहाँ वन है, वहाँ तो बैठने का स्थान है परन्तु ऐसे गोटी के आकार में ऐसे सीधा है, वहाँ बैठा नहीं जा सकता तो भी उस-उस कण-कण से अनन्त मोक्ष में गये हैं। आहाहा! क्योंकि ऊपर अनन्त सिद्ध एकसाथ ऐसे स्थित हैं। एक जगह अनन्त सिद्ध हैं। उस जगह अनन्त किस प्रकार हुए? शरीर को पछाड़ा है, वहाँ स्वयं गुप्त हैं, उन्हें तो कोई पछाड़ सकता नहीं। आहाहा! उस गुप्त में अन्दर में रमणता करता आत्मा, जिसे रक्षा का या कोई चोर ले, उसका भय नहीं, वह निर्भयरूप से अन्दर में रहता है। निर्भयरूप से अन्दर गुप्त होने पर केवलज्ञान जलहलज्योति प्रगट होती है। आहाहा! वहाँ से देह नीचे रह जाती है, आत्मा ऊपर चला जाता है। मेरुपर्वत के एक-एक कण में... आहाहा! समझ में आया? कैसे?

और [अकृतं ज्ञानं नुः स्वरूपं] अकृतज्ञान (-जो किसी के द्वारा नहीं किया गया है... वह तो स्वाभाविक वस्तु है। भगवान आत्मा किसी ने किया है, ऐसा नहीं है। वह तो अकृत्रिम अनादि की चीज़ है। आहाहा! [अकृतं ज्ञानं नुः स्वरूपं] ज्ञान अर्थात् आत्मा। अकृतज्ञान (-जो किसी के द्वारा नहीं किया गया है, ऐसा स्वाभाविक ज्ञान) पुरुष का अर्थात् आत्मा का स्वरूप है;... आत्मा का ज्ञानस्वरूप, वह स्वाभाविक / अकृत्रिम है, किसी ने किया हुआ नहीं है। अनादि सत् है। उसे कोई चोरी कर जाए, घात कर जाए, छीन ले, ऐसी कोई चीज़ नहीं है। आहाहा! बाहर की चीज़ ले जाए तो वह बाहर की चीज़ तो इसकी नहीं है। समझ में आया? उसमें मेरा कुछ ले गया है, ऐसा नहीं है। वह चीज़ कहीं मेरी नहीं थी। मेरी होवे तो ले जाए, परन्तु मेरी नहीं थी, फिर ले कौन जाए? जो मेरी चीज़ है, उसे तो कोई स्पर्श नहीं कर सकता। आहाहा! ऐसा मार्ग है।

भाई! जन्म-मरणरहित होने का मार्ग बहुत अलौकिक है। आहाहा! चौरासी के

अवतार देखो न, यह मोरबी में देखो न कैसा हुआ ? आहाहा ! बेचारे कितने लोग मर गये । अस्पताल में ३५० से ऊपर मुर्दे निकले । श्रावण महीने में रामजी मन्दिर में अस्सी महिलाएँ प्रार्थना करती थीं । पानी गया, सब मुर्दे, मर गये । अररर ! मरकर कहाँ जाना उन्हें ? क्योंकि उस समय तो यह शरीर कैसे निभे, कैसे निभे ? (ऐसा चलता हो) । अररर ! बहुत तो बेचारे आर्य मनुष्य हों (तो) पशु में जाए । अरेरेरे ! आहाहा ! यहाँ से ऐसी स्थिति में देह छूटे, (फिर) पशु में जाए । वहाँ मैं कौन हूँ, ऐसा सुनने को मिले नहीं । आहाहा !

यहाँ कहते हैं, मैं तो अकृत ज्ञान हूँ । किसी से नहीं किया गया, ऐसा आत्मा का स्वरूप । है न ? पुरुष अर्थात् आत्मा, ऐसा । [अकृतं ज्ञानं नुः स्वरूपं] पुरुष का अर्थात् आत्मा का स्वरूप है; (इसलिए ज्ञान आत्मा की परम गुप्ति है) । ज्ञान—आत्मा तो अन्दर गुप्त ही है । [अतः अस्य न काचन अगुप्तिः भवेत्] इसलिए आत्मा की किञ्चित्मात्र भी अगुप्तता... नहीं । आहाहा ! बाहर में जरा भी नहीं रहता । अन्दर गुप्त है । आहाहा ! राग से भी भिन्न भगवान अन्दर गुप्त है । आहाहा ! राग भी जिसे स्पर्श नहीं करता तो दूसरी कोई चीज़ छीन ले और हर ले, (ऐसा नहीं है) । आहाहा ! राग आता है, वह भी यहाँ स्वभाव को स्पर्श नहीं करता और स्वभाव, वह राग को स्पर्श नहीं करता । उसी प्रकार मैं राग से परम गुप्तस्वरूप ही हूँ । आहाहा ! अगुप्तिपना नहीं है ।

[ज्ञानिनः तद्-भीः कुतः] ज्ञानी को अगुप्ति का भय कहाँ से हो सकता है ? आहाहा ! कोई छीन लेगा या चोर लेगा—ऐसा भय उसे नहीं होता । आहाहा ! देखो ! यह समकित के निःशंक ऐसे, निर्भय ऐसे सात का वर्णन है । सात भय है न ? सात भय का वर्णन है । भय ज्ञानी को नहीं है । निःशंक है कहो या निर्भय है कहो । आहाहा ! 'सः' वह आत्मा 'स्वयं' स्वयं 'सततं' निरन्तर । देखा ? दो बार (आया) । 'सततं' और 'सदा' । आहाहा ! धर्मी तो आत्मा की दृष्टि ध्रुव की हुई है, उस ध्रुव में गुप्तरूप ही स्थित है । आहाहा ! वह निरन्तर निःशंक वर्तता हुआ । यह सम्यग्दृष्टि की बात है । सम्यग्दृष्टि को सात भय नहीं होते । उसमें यह अगुप्तिभय अर्थात् कोई चोर लेगा, ऐसा भय नहीं होता । आहाहा ! निरन्तर निःशंक वर्तता हुआ सहज ज्ञान... अर्थात् आत्मा को सदा, स्वाभाविक आत्मा को सदा अनुभव करता है । आहाहा ! देखो ! अर्थ किया न ?

भावार्थ : 'गुप्ति' अर्थात् जिसमें कोई चोर इत्यादि प्रवेश न कर सके, ऐसा

किला, भोंयरा... आहाहा! ऐसा किला मैं हूँ, कहते हैं। दुर्ग—किला हूँ। आहाहा! उसमें प्राणी निर्भयता से निवास कर सकता है। ऐसा गुप्त प्रदेश न हो और खुला स्थान हो तो उसमें रहनेवाले प्राणी को अगुप्तता के कारण भय रहता है। बाहर होवे तो कोई चोर आयेगा, यह आयेगा (ऐसा हो) परन्तु भोंयरा में अन्दर में अकेला हो, उसे चोर आयेगा और ले जाएगा, ऐसा है नहीं। आहाहा! वस्तु के निज स्वरूप में कोई दूसरा प्रवेश नहीं कर सकता, इसलिए वस्तु का स्वरूप ही वस्तु की परम गुप्ति... वस्तु का स्वरूप वस्तु की परम गुप्ति है। आहाहा! अभेद किला है, देखा? आया न! अभेद किला है। भगवान अभेद किला है, ध्रुव है। आहाहा! पुरुष का अर्थात् आत्मा का स्वरूप ज्ञान है; उस ज्ञानस्वरूप में रहा हुआ आत्मा गुप्त है क्योंकि ज्ञानस्वरूप में दूसरा कोई प्रवेश नहीं कर सकता। ऐसा जाननेवाले ज्ञानी को अगुप्तता का भय कहाँ से हो सकता है? वह तो निःशंक वर्तता हुआ अपने स्वाभाविक ज्ञानस्वरूप का निरन्तर अनुभव करता है।

(विशेष कहेंगे)...

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)